

दलित महिलाओं के जीवन में सुधार: पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हरेन्द्र कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, समाजशास्त्र विभाग, जे०एस० हिन्दू (पी०जी०)
कॉलेज, अमरोहा (सम्बद्ध: गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद), उत्तर प्रदेश

E-mail: <harendra.kmr12@gmail.com>

सारांश

भारत में पंचायती राज व्यवस्था एक महत्वपूर्ण व्यवस्था रही है जिसके माध्यम से ग्रामीण पंचायतों में नवीन कार्य एवं आयामों का सृजन हुआ तथा साथ ही ग्रामीण स्तर पर अनेक महिलाओं का जीवन में सुधार एवं स्तर में बदलाव हुआ। पंचायती राज व्यवस्था अन्य महिलाओं के साथ-साथ दलित महिलाओं के लिए भी अवसर व नेतृत्व करने के रास्ते बनाने में सहायक हुई। परन्तु सामाजिक भेदभाव एवं पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण अभी भी दलित महिलाओं को कई कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आज भारत देश आजादी के 80 वर्ष बिता चुका है फिर भी दलित महिलाओं की भागेदारी पंचायती राज व्यवस्था में काफी कमी है। संविधान के 73वें संशोधन ने दलितों की दलित महिलाओं को पंचायती कार्य एवं चुनाव में आगे बढ़ने के मौके दिए जिससे उनमें आत्मविश्वास तथा अपने लिए निर्णय लेने, अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने, जातिगत भेदभाव एवं महिलाओं के प्रति होने वाली अनेक हिंसाओं का विरोध करने व शिक्षा को अपना मजबूत हथियार बनाने की क्षमता उत्पन्न हो सकी। पंचायती राज व्यवस्था के साथ-साथ अनेक अन्य संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं ने भी महिलाओं, विशेषकर दलित महिलाओं, के जीवन में सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रस्तुत शोध-पत्र दलित महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को बेहतर बनाने में पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं विभिन्न सरकारी योजनाओं/कानूनों की भूमिका को समझने की एक कोशिश है। इसमें यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस दिशा में अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है, क्योंकि सामाजिक भेदभाव, शिक्षा में पिछड़ापन तथा नौकरियों में प्रतिनिधित्व की कमी जैसी समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं।

प्रमुख शब्द

[पंचायती राज, जीवन में सुधार, व्यवस्था, दलित महिलाओं, जीवन स्तर, बदलाव।]

Centre For Studies of National Development, Meerut

Editorial Office : D-59, Shastri Nagar, Meerut - 250 004 (INDIA)

Ph. : 0121-2763765, +91-9997771669, +91-9412200765

4

दलित महिलाओं के जीवन में सुधार: पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

1. परिचय

स्वतन्त्रता-पूर्व काल तक महिलाओं, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं दलित महिलाओं की असहाय, निर्बल, पराधीन एवं परतन्त्र स्थिति की सहज ही कल्पना की जा सकती है क्योंकि एक तो दलित तथा उस पर भी महिला। वास्तव में, भारतीय समाज की पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था में दलित महिलाओं की स्थिति अत्यन्त वंचित एवं असमान रही है। जाति-आधारित भेदभाव, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना तथा आर्थिक निर्भरता के कारण उन्हें दोहरे ही नहीं, बल्कि कई स्तरों पर भेदभाव का सामना करना पड़ा। वे प्रायः भूमिहीन श्रमिक, घरेलू कामगार एवं निम्न आय वाले असंगठित कार्यों में संलग्न रहती थीं। शिक्षा, सम्पत्ति, स्वास्थ्य सुविधाओं तथा सामाजिक एवं राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया तक उनकी पहुँच सीमित थी। जातिगत छुआछूत एवं सामाजिक बहिष्कार ने उनकी गरिमा, स्वतन्त्रता एवं सामाजिक गतिशीलता को भी प्रभावित किया।

पारम्परिक ग्रामीण व्यवस्था में दलित महिलाओं का जीवन मुख्यतः परिवार एवं आजीविका के दोहरे दायित्वों से जुड़ा रहा। वे कृषि श्रम, पशुपालन, घरेलू कार्य तथा अन्य श्रमसाध्य गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देती थीं, किन्तु उनके श्रम को पर्याप्त सामाजिक मान्यता एवं आर्थिक प्रतिफल नहीं मिलता था। निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी नगण्य थी तथा सामाजिक रूढ़ियाँ उनके अधिकारों एवं अवसरों को सीमित करती थीं। इस प्रकार, स्वतन्त्रता-पूर्व एवं प्रारम्भिक स्वतन्त्रता काल में दलित महिलाओं की पारम्परिक स्थिति सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक वंचना की विशेषताओं से चिह्नित रही, जिसने उनके समग्र विकास में गम्भीर बाधाएँ उत्पन्न कीं।

भारतीय समाज की आज भी एक बड़ी विडम्बना यह है कि “देश की आजादी को 80 वर्ष गुजर जाने के बाद भी यह देश जाति व्यवस्था, लिंग एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था से बाहर नहीं निकल सका है।”¹ जाति से जुड़ी वैचारिक मान्यताओं के कारण आज भी निम्न जाति के लोगों को उपेक्षित, गरीब, हरिजन, दलित जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। इसमें महिलाओं, दलित की स्थिति और भी खराब है।

भारत में महिलाओं के जीवन में सुधार से सम्बन्धित अनेक आन्दोलन हुए हैं जिसमें मुख्य रूप से राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द विद्या सागर, दयानन्द सरस्वती जैसे महान समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं के लिए सामाजिक आन्दोलन किए गए। इसके बाद कुछ और नाम भी आ जाते हैं जैसे—महात्मा गाँधी, डॉ० बी०आर० अम्बेडकर व ज्योतिबा राव फुले जिन्होंने महिलाओं की सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षा व संवैधानिक अधिकारों के लिए अपने-अपने महत्वपूर्ण कार्य किए। इन सभी का प्रयास महिलाओं को केन्द्र, राज्य, स्थानीय व निकाय स्तर पर भी भागीदारी दिलाने का था। इसके लिए महात्मा गाँधी जी ने कहा कि “जब तक महिलाएँ सार्वजनिक रूप से जीवन में भाग नहीं लेती तब तक इस देश को मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए ऐसे स्वराज का कोई अर्थ नहीं है जिसको प्राप्त करने के लिए महिलाओं ने अपना सम्पूर्ण योगदान न दिया हो।”²

स्वतन्त्रोपरान्त भारत में स्थापित नवीन संविधान में दलितों की परम्परागत निर्योग्यताओं तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए उनके लिए दोहरी सुरक्षा एवं अधिकारों का प्रावधान किया गया

है। एक ओर उन्हें देश के एक सामान्य नागरिक के रूप में अन्य नागरिकों के समान समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं, तो दूसरी ओर दलित होने के नाते उनके लिए आरक्षणों एवं अधिकारों की व्यवस्था की गई है। अस्पृश्यता दूर करने हेतु 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955' तथा इसे प्रभावी बनाने हेतु 'नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976' पारित किया गया। राजनीतिक सहभागिता प्रदान करने के उद्देश्य से संसद एवं विधान मण्डलों में उनके स्थान आरक्षित किए गए हैं। इसी प्रकार इनके आर्थिक एवं शैक्षिक उन्नयन हेतु शासन ने अनेकानेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों की व्यवस्था की है।

संविधान में दलितों की सुरक्षा एवं विशेष सुविधाएँ देने का प्रावधान है, सरकार दलितों के लिए एक आयुक्त नियुक्त कर उनकी शिकायतों एवं प्रतिकूल स्थिति का विश्लेषण करती है। आयुक्त द्वारा दी गई वार्षिक आख्या संसद में प्रस्तुत की जाती है जिसके परिणाम स्वरूप समय-समय पर विभिन्न कमेटियाँ गठित होती हैं जो अपनी निश्चित समय सीमा के अन्दर रिपोर्ट देती हैं उनके उपरान्त सरकार नये प्रावधानों का निर्माण करती है तथा पुराने में आवश्यकतानुसार सुधार करती है।³

विश्व का कोई भी समाज तब तक सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं बन सकता जब तक उस राष्ट्र में से भेदभाव ऊँच-नीच, धर्म, जाति, नस्ल, रंग, निवास आदि के अन्तर को समाप्त नहीं किया जाता। चूँकि भारत के संविधान के अनुसार सभी को एक समान माना गया है, अतः इसी आधार पर महिलाओं को पंचायती राज के सभी स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है जिसके आधार पर महिलाएँ अपने जीवन में बदलाव ला सकें। साथ ही दलित, जनजाति व पिछड़े वर्ग की महिलाएँ भी इस प्रक्रिया में पूर्ण सहभागी बनी हैं।

भारतीय संविधान में '73वें संविधानिक संशोधन के आधार पर पंचायत शीर्षक के रूप में एक नया खण्ड जोड़ा गया।'⁴ इसके साथ ही, संविधान की 11वीं अनुसूची भी बनाई गई। जिसमें पंचायतों के दायरे में आने वाले 29 विषय के कार्यों को सम्मिलित किया गया। इस संशोधन के आधार पर नीति निर्धारक सिद्धान्त के अनुच्छेद 40 को लागू किया गया। इसके आधार पर महिलाओं की भागीदारी, विशेषकर दलित व जनजाति को आबादी को आधार पर हिस्सेदारी देने का प्रावधान किया गया। इस हिस्सेदारी के आधार पर एक-तिहाई सीटें सभी महिलाओं सहित इसी समुदायों की महिलाओं के लिए भी आरक्षित की गई।

भारतीय लोक प्रशासन के आँकड़ों के आधार पर पंचायती राज संस्थान में दलित महिलाओं के राजनीतिक भागीदारी को बढ़ाने के लिए देश के 29 राज्यों में से 17 राज्यों की पंचायतों में दलित महिलाओं के लिए 5 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। इस फैसले से केवल उच्च वर्ग की महिलाएँ ही नहीं बल्कि निम्न जाति स्तर की महिलाओं को भी राजनीतिक स्तर पर भागीदारी का मौका मिला है। इन दलित महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ने के आधार पर उनके नेतृत्व के द्वारा अनेक पंचायतों के महत्वपूर्ण कार्यों का क्रियान्वयन भी हुआ। अनेक ग्राम पंचायतों इन समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य किया है।

किसी भी समाज के विकास के लिए शिक्षा सबसे बड़ा माध्यम है तथा इसी दश माध्यम की कमी के कारण दलितों को सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। दलितों को अयोग्यता का दंश झेलना पड़ा, शोषण व सामाजिक अधीनता की मुख्य वजह भी इस समाज शिक्षा रही है। यही शिक्षा न होने के कारण पंचायती राज के कार्यक्रम बनाने उन्हें लागू कराने के साथ-साथ अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, परन्तु पंचायती राज में दलित महिलाओं की भागीदारी अहम रही है। शिक्षा व आर्थिक स्थिति कमजोर होने के बाद भी दलित महिलाएँ पंचायती राज व्यवस्था के कार्य को पूर्ण करने, अपने परिवार का पालन-पोषण करने, कृषि व अन्य कार्यों में भी लिप्त हैं। पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के अतिरिक्त, भारत सरकार इन दलित महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए हमेशा कुछ-न-कुछ संवैधानिक प्रावधानों व महत्वपूर्ण सरकारी योजनाओं/कानूनों द्वारा लगातार प्रयास करती रही है ताकि दलित महिलाओं की समस्याओं का सन्तोषजनक स्तर पर समाधान किया जा सके।

निस्सन्देह, आज के समय में दलित महिलाओं के जीवन स्तर, स्थिति एवं दशा में परिवर्तन प्रगतिशील एवं विकासोन्मुख है। यह अत्यन्त स्वभाविक है, कि वर्तमान परिवर्ती व प्रगतिशील सामाजिक

परिवेश में दलित महिलाओं के विचार, जीवन प्रतिमान, आदर्श मूल्य तथा दृष्टिकोण अवश्यमेव प्रभावित एवं परिवर्तित हुए होंगे। तात्पर्य यह है कि आज दलित महिलाओं के विचारों व जीवन प्रतिमानों में गतिशीलता व परिवर्तनशीलता स्पष्टतः परिलक्षित हो रही है। शासकीय योजनाओं के फलस्वरूप उन्हें शिक्षित होने के अवसर प्राप्त हुए हैं, वे सवर्ण एवं सभ्य कहे जाने वाले लोगों से सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हो रही हैं। आज वे अनुभव कर रही हैं, कि वे स्वतन्त्र भारत में उपेक्षित नहीं हैं। आज उनमें अपनी स्थिति एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता का विकास हो रहा है तथा राजनीतिक क्षेत्र में आरक्षण से उन्हें अवसर शक्ति का आभास होने लगा है। इस समस्त परिवर्तन के परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है। साथ ही यह जानना भी अति आवश्यक है कि क्या पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं शासकीय योजनाओं का सही क्रियान्वयन हो रहा है? इनसे दलित महिलाएँ लाभान्वित हो रही हैं अथवा कुछ विशिष्ट महिलाएँ ही? कहीं ये दलितों की महिलाओं में परजीविता का विकास तो नहीं कर रही हैं। क्या ये दलितों के प्रति सवर्ण जातियों में हृदय परिवर्तन करने में सफल हुई हैं? क्या इन परिवर्तनों के फलस्वरूप दलित सामाजिक सांस्कृतिक विचारों एवं दृष्टिकोणों में परिवर्तन हुआ है? पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं शासकीय योजनाओं के प्रति दलित महिलाओं की क्या प्रतिक्रिया है? तथा वे इस सम्बन्ध में क्या सुझाव देना चाहती हैं? दलित महिलाओं के उत्थान के लिए सरकार द्वारा कार्यान्वित विभिन्न योजनाओं एवं नीतियों के परिपेक्ष्य में दलित महिलाओं के सामाजिक, अर्थिक, शैक्षिक धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन में हो रहे परिवर्तन का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करना प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य लक्ष्य रहा है।

2. शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य

वर्तमान शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. स्वतन्त्रोपरान्त भारतीय समाज में पंचायती राज, दलित महिलाओं के उत्थान से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं का वर्णन करना।
2. स्वतन्त्रोपरान्त भारतीय समाज में दलित जाति की महिलाओं की स्थिति के उत्थान में पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं की भूमिका ज्ञात करना।
3. स्वतन्त्रोपरान्त भारतीय समाज में पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं के परिणामस्वरूप दलित महिलाओं के जीवन में सुधार एवं उत्थान की सीमा ज्ञात करना।
4. यह पता लगाना कि समकालीन भारतीय समाज में दलित महिलाओं के उत्थान हेतु क्या-क्या सुधार अभी अपेक्षित हैं।

3. अनुसन्धान पद्धतिशास्त्र

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसन्धान पद्धति पर आधारित है तथा इसमें प्राथमिक आँकड़ों का प्रयोग नहीं किया गया है। अध्ययन के लिए मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं में दलित महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी, प्रतिनिधित्व, सशक्तिकरण तथा उनके सामाजिक एवं जीवनगत सुधार में पंचायती राज की भूमिका का संवैधानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। अध्ययन में भारतीय संविधान के प्रासंगिक प्रावधानों, विशेष रूप से 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, संविधान के भाग IX तथा ग्यारहवीं अनुसूची से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त पंचायती राज मन्त्रालय, भारत सरकार तथा अन्य सरकारी संस्थाओं की रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेजों, जनगणना एवं उपलब्ध सांख्यिकीय आँकड़ों, शोध-पत्रों, पुस्तकों, शोध-प्रबन्धों, पत्र-पत्रिकाओं तथा विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोतों से सम्बन्धित सामग्री संकलित की गई है। 73वें संशोधन के अन्तर्गत पंचायतों में महिलाओं के लिए कम-से-कम एक-तिहाई आरक्षण तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षण की व्यवस्था ने स्थानीय शासन में वंचित समूहों की राजनीतिक भागीदारी के लिए संवैधानिक आधार प्रदान किया।

अध्ययन में ऐतिहासिक एवं संवैधानिक-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए पंचायती राज तथा संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं द्वारा दलित महिलाओं की स्थिति में आए परिवर्तनों को स्थानीय लोकतन्त्र के विकास के सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। अन्ततः विभिन्न द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त निष्कर्षों का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि संवैधानिक आरक्षण किस सीमा तक दलित महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण तथा उनके जीवन-स्तर में सुधार का माध्यम बना है।

4. पंचायती राज एवं संवैधानिक प्रावधान

“हमारा देश (भारत) ग्रामों का देश है, इसकी स्वशासन की इकाई के रूप में ग्रामीण पंचायतों का यहाँ विशेष महत्व रहा। इस कारण पंचायतों को नवीन आयाम प्रदान करने के लिए पंचायती राज अवधारणा का विकास सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को गति प्रदान करने तथा इच्छित जन सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ। पंचायती राज योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1952 को नागौर में पं० जवाहर लाल नेहरू के द्वारा किया गया।”⁵ देश की विकास परिषद ने 1958 में पंचायती राज योजना को स्वीकार कर लिया था तथा ‘सन् 1959 में पंचायती राज योजना की शुरुआत हुई थी, भारत सरकार ने संविधान के अनु० 73 के अन्तर्गत पंचायतों को पंचायती राज व्यवस्था के अन्दर विशेष प्रावधानों के अन्तर्गत काफी अधिकार प्रदान किए हैं। इतना ही नहीं महात्मा गाँधी की मान्यता थी, कि भारतीय ग्रामीण जीवन का पुनः निर्माण ग्राम पंचायतों की स्थापना से ही सम्भव है। आर० के० मुखर्जी ने ग्राम पंचायतों को प्रजातन्त्र के देवता की संज्ञा दी है सभा के रूप में अपने सदस्यों के समान अधिकारों स्वतन्त्रताओं के लिए निर्मित होती है ताकि सब में समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व का विचार दृढ़ रहे।’⁶

‘पंचायती राज के अन्तर्गत त्रिस्तरीय पंचायत राज संस्थाओं’ की व्यवस्था की गई है, ग्राम के स्तर पर ग्राम पंचायत, विकासखण्ड स्तर खण्ड समिति, एवं जिला स्तर पर, जिला पंचायत। पंचायत स्तर पर ग्राम पंचायतों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जिला परिषद स्तर पर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। ग्राम पंचायतों में दलितों, जनजातियों तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित है। इसमें निर्वाचित होने की योजना भारतीय नागरिक होना, 21 वर्ष आयु तथा राज्य विधान मण्डल के लिए निर्वाचित होने की योजना के समान है। पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष होता है परन्तु इसके पूर्व भी विघटन हो सकता है, ऐसा प्रावधान है।’⁷

दलित महिलाओं के जीवन में सुधार के सन्दर्भ में पंचायती राज के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, अन्य संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं का उल्लेख करना ज़रूरी है। 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 भारतीय लोकतन्त्र में स्थानीय स्वशासन एवं सामाजिक समावेशन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण संवैधानिक पहल है। इस संशोधन द्वारा संविधान में भाग-IX (पंचायतें) जोड़ा गया तथा पंचायतों को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। इसके माध्यम से ग्राम, मध्यवर्ती एवं जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं की व्यवस्था को संस्थागत रूप दिया गया। इससे ग्रामीण समाज के वंचित वर्गों, विशेषकर दलित महिलाओं, को स्थानीय राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी का संवैधानिक अवसर प्राप्त हुआ।

दलित महिलाओं के सशक्तिकरण की दृष्टि से अनुच्छेद 243D विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसमें पंचायतों में अनुसूचित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों के आरक्षण का प्रावधान है तथा आरक्षित सीटों में कम-से-कम एक-तिहाई सीटें अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए आरक्षित की गई हैं। इसके अतिरिक्त पंचायतों में कुल प्रत्यक्ष निर्वाचित सीटों में कम-से-कम एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए तथा पंचायतों के अध्यक्ष पदों में भी कम-से-कम एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। इस व्यवस्था ने दलित महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व, नेतृत्व एवं निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में प्रवेश का अवसर प्रदान किया है।

संविधान के भाग-IX के अनुच्छेद 243G तथा ग्यारहवीं अनुसूची पंचायतों को स्थानीय विकास से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर कार्य करने का आधार प्रदान करते हैं। ग्यारहवीं अनुसूची में कृषि, ग्रामीण आवास, पेयजल, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, महिला एवं बाल विकास, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, सामाजिक कल्याण तथा कमजोर वर्गों के कल्याण सहित 29 विषय सम्मिलित हैं। इन विषयों से सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों में दलित महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी उनके समुदाय की शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, आजीविका, बुनियादी सुविधाओं एवं सामाजिक सुरक्षा से जुड़ी आवश्यकताओं को स्थानीय शासन के एजेंडे में लाने में सहायक हो सकती है।

इस प्रकार, 73वाँ संविधान संशोधन केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने वाला प्रावधान नहीं है, बल्कि दलित महिलाओं के व्यापक सामाजिक सशक्तिकरण का संवैधानिक माध्यम भी है। पंचायतों में आरक्षण ने उन्हें सार्वजनिक जीवन, नेतृत्व एवं निर्णय-निर्माण में स्थान दिया है, जबकि ग्यारहवीं अनुसूची में सम्मिलित विकासात्मक विषय उनके सामाजिक-आर्थिक जीवन में सुधार के लिए कार्यक्षेत्र उपलब्ध कराते हैं। हालाँकि वास्तविक जीवन में इन प्रावधानों का प्रभाव शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, जातिगत भेदभाव, पितृसत्तात्मक संरचनाओं, आर्थिक निर्भरता एवं राजनीतिक स्वायत्तता जैसे कारकों से प्रभावित होता है; अतः संवैधानिक अधिकारों एवं उनके वास्तविक सामाजिक परिणामों के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण आवश्यक है।

‘अनुच्छेद-15 के अनुसार किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा। इस अनुच्छेद के प्रमुख प्रावधानों से सीधा-सीधा अर्थ यह है कि किसी विशेष धर्म या जाति के साथ राज्य अन्य धर्म या जातियों के व्यक्तियों की तुलना में जाति को मानकर पक्षपात नहीं करेगा।’⁸ अनुच्छेद-16 के द्वारा धर्मों, मूलवंश, जाति, लिंग या स्थान के आधार पर विभेद नहीं किया जाएगा। कुछ अन्य सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं—

1. अनुच्छेद-17, में अस्पृश्यता को कानून की दृष्टि में अपराध घोषित करने की व्यवस्था की गई है। ‘अनुच्छेद-17 के अन्तर्गत अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है तथा उसका किसी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता में उसी किसी नियोग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि के अनुसार दण्डनीय है। संसद को प्राधिकार दिया गया है कि वह विधि द्वारा इस अपराध के लिए दण्ड निर्धारित करे।’⁹ ‘अस्पृश्यता’ से उपजी किसी नियोग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा। यह परिभाषा अस्पृश्यता निवारण अधिनियम 1955 में थी जो 1976 में बदल कर ‘नागरिक’ अधिकार संरक्षण अधिनियम 1976 हो गया।’¹⁰ इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बिन्दुओं को अपराध घोषित किया गया है—

- दलित के किसी सदस्य का अस्पृश्यता के आधार पर अपमान।
- प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता का उपदेश देना।
- इतिहास दर्शन या धर्म के आधार पर या जाति व्यवस्था की परम्परा के आधार पर अस्पृश्यता को न्यायोजित ठहराना।

2. अनुच्छेद-35 के अन्तर्गत सामाजिक अन्याय व विभिन्न प्रकार के शोषण से सुरक्षा।
3. धार्मिक संस्थाओं को दलितों के लिए सुलभ करवाना।
4. कुँओं, तालाबों, दुकानों, रेस्त्राँ एवं सड़कों आदि पर दलितों के जाने पर लगे प्रतिबन्धों को हटाना।
5. शैक्षणिक संस्थाओं के नामांकन के लिए विशेष सुविधाएँ देना।
6. शिक्षा के लिए विशेष लाभ एवं आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराना।
7. सरकारी सेवाओं में भर्ती व पदान्ति में विशेष प्रावधान।
8. लोक सभा, विधान सभाओं एवं पंचायती राज संस्थाओं में विशेष प्रतिनिधित्व का प्रावधान।

9. 'दलित महिला कल्याण तथा हितों की सुरक्षा करने के लिए एक अलग विभाग एवं सलाहकार परिषद के गठन का प्रावधान।' ¹¹

5. वैधानिक आरक्षण व्यवस्था

'साइमन कमीशन द्वारा 1928 में दलित शब्द की नींव डाली। शब्द 'दलित वर्ग' का पदार्पण 1931 की जनगणना में सर्वप्रथम बार हुआ तथा 1935 में प्रथम बार यह शब्द सरकार द्वारा प्रयोग किया गया।' ¹² 'संविधान की पाँचवीं तथा छठी अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्र के प्रशासन के सम्बन्ध में प्रावधान किया है। संसद में विधि बनाकर राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया है कि राष्ट्रपति किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकते हैं। पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत क्षेत्र के दलितों के कल्याण एवं उन्नति से सम्बन्धित ऐसे विषयों पर सलाह देने के लिए सलाहकार परिषदों का गठन किया जाये।' ¹³

अनुसूचित जाति के लिए संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं—

1. अनुच्छेद 330—लोक सभा में दलितों के लिए स्थानों का आरक्षण।
2. अनुच्छेद 334—स्थानों के आरक्षण एवं विशेष प्रतिनिधित्व।
3. अनुच्छेद 335—सेवाओं को पदों के लिए दलितों के दावे।
4. अनुच्छेद 338—दलितों के लिए विशेष जानकारी।
5. लोकसभा तथा राज्य विधान मण्डलों में आरक्षण के अतिरिक्त सम्पूर्ण जनसंख्या में इनके अनुपात को देखते हुये सरकारी सेवाओं में शैक्षणिक संस्थाओं में राष्ट्रीय स्तर पर 15 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है।
6. संविधान (आठवाँ) संशोधन अधिनियम, 1960 के द्वारा प्रावधान अनुच्छेद 334 में संशोधन करके दलितों के लिए लोकसभा तथा विधान सभाओं में आरक्षण की अवधि को 20 वर्ष तक के लिए बढ़ाया गया। ¹⁴
7. संविधान (23वाँ) संशोधन अधिनियम, 1970 के द्वारा दलितों के लिए लोक सभा तथा विधान सभाओं में आरक्षण की अवधि को 10 वर्ष तक बढ़ाया गया।
8. संविधान (45वाँ) संशोधन अधिनियम, 1980 के द्वारा लोक सभा तथा विधान सभाओं में दलितों के आरक्षण में 10 वर्ष की वृद्धि की गई।
9. संविधान (62वाँ) संशोधन अधिनियम, 1989 के द्वारा लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में दलितों के लिए 10 वर्ष के लिए वृद्धि की गई।
10. संविधान (65वाँ) संशोधन अधिनियम, 1990 के द्वारा अनुच्छेद 338 में संशोधन करके दलित के लिए एक आयोग के गठन की व्यवस्था की गयी।
11. संविधान (72वाँ) संशोधन, 1997 के अनुसार पंचायती संस्थाओं में भी दलितों के लिए आरक्षण व्यवस्था होगी।
12. संविधान (73वाँ) संशोधन अधिनियम, 1995 संविधान के अनुच्छेद 16 में (4क) के अन्तर्गत राज्य की आधीन सेवाओं में पदोन्नति के लिए दलित को आरक्षण प्रदान किया जा सके।
13. संविधान (79वाँ) संशोधन अधिनियम, 1999 के द्वारा सरकार ने दलितों के लिए लोक सभा तथा राज्य विधान मण्डलों के आरक्षण 10 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।
14. संविधान (81वाँ) संशोधन अधिनियम, 2000 में व्यवस्था दी गई है कि संविधान के अनुच्छेद-16 की व्यवस्था के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों के सरकारी पद जितने रिक्त हैं। अगर इस वर्ष नहीं भरे जाते हैं तो उनकी इसी वर्ष से अगले वर्षों में नियुक्ति की जायेगी। ¹⁵

15. संविधान (82वाँ) संशोधन अधिनियम, 2000 में दलितों के सदस्यों के पक्ष में किसी परीक्षा के आर्हता अंकों अथवा मूल्यांकन के स्तरों में नरमी बरतने के लिए की गई किसी व्यवस्था को संविधान के अनुच्छेद 335 का कोई भी प्रावधान को नहीं कर सकेगा।¹⁶
16. संविधान (81वाँ) संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 82 एवं 170(3) की शर्तों में संशोधन किया है, कि 1991 की जनगणना के दौरान सुरक्षित की गयी जनसंख्या के आधार पर राज्यों की विधान सभाओं एवं लोक सभा के लिए आरक्षित, दलित एवं अनुसूचित जनजाति की संख्या फिर से निर्धारित की जायेगी।¹⁷
17. संविधान (85वाँ) संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 16 (4ए) में संशोधन किया गया है जिससे अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सरकारी कर्मचारियों को आरक्षण नियमों के अन्तर्गत पदोन्नति के मामले में अनुषंगिक वरीयता प्रदान की जा सके। इसे 17 जून, 1995 से प्रभावी माना गया।¹⁸

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रयास निम्नलिखित हैं—

- दलितों के विकास के लिए छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में एक व्यापक त्रिकोणीय रणनीति तैयार की गई थी।
- केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं राज्य सरकारों के विशेष घटक योजनायें-स्पेशल कम्पोनेंट प्लान्स (एस0सी0पी0) बनायी गई।
- राज्य की दलितों के लिए एस0सी0पी0 को विशेष केन्द्रीय सहायता।
- राज्यों में दलित विकास निगम।
- संविधान ने 1990 में किए गए एक संशोधन (65वें) के अनुसार 338 के अन्तर्गत दलित आयोग का गठन किया गया है।¹⁹

दलितों के लिए कल्याण मन्त्रालय एवं राष्ट्रीय आयोग (नेशनल कमीशन ऑफ शिड्यूल कास्ट्स) के प्रतिवेदन निरन्तर दलितों के विरुद्ध अपराधों की संख्या में वृद्धि का विवरण देते रहते हैं। आयोग के द्वारा राज्यों को भी समय-समय पर निर्देश व आदेश दिए जाते हैं कि दलितों के लिए कल्याणकारी आदेशों के अनुपालन के लिए उपाय करें। 1989 में दलित (अत्याचार निरोधक) विधेयक जिसे 'दलित एक्ट' भी कहा जाता है। सदस्यों पर अत्याचार रोकने हेतु पारित किया गया। इसमें निम्नलिखित कार्यों को अवरोध माना गया है—

- अनुसूचित जाति के सदस्यों को आखाद्य पदार्थों को खाने या पीने के लिए विवश करना।
- अनुसूचित जाति के सदस्य की भूमि पर कब्जा करना अथवा खेती करना अथवा भूमि एवं भवन से बेदखल करना।
- अनुसूचित जाति के किसी सदस्य को बन्धक रखना तथा किसी विशेष उम्मीदवार को वोट देने के लिए बाध्य करना।
- अनुसूचित जाति के व्यक्ति के विरुद्ध मुकदमा चलाना अथवा जाति सूचक शब्द से सम्बोधित करना।
- अनुसूचित जाति के व्यक्तियों द्वारा कार्य में लाए जाने वाले जल स्रोतों को दूषित करना। इन अपराधों के लिए 5 या 6 साल तक जेल का प्रावधान है।

6. सरकारी योजनाएँ

दलित कार्यरत महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हेतु कुछ सरकारी योजनायें एवं कार्यक्रम समय-समय पर लागू किए गए जो निम्न प्रकार हैं, जैसे—'दलित महिलाओं के

साथ-साथ कमजोर एवं पिछड़े वर्गों आदि को विशेष सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने एवं उनके सशक्तिकरण के अहम उद्देश्यों को लेकर कुछ कार्यक्रमों एवं योजनाओं को संचालित किया गया। जिनमें बालबाड़ी पोषाहार कार्यक्रम (1970-71), समन्वित बाल विकास योजना (1975-76), प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (1978-79), अनौपचारिक शिक्षा योजना (1979-80), ग्रामीण प्रति रक्षण कार्यक्रम (1985-86), किशोरी बालिका योजना (1985-86), ग्रामीण कुटीर बीमा योजना (1989-90), सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना (1989-90), बाल श्रम उन्मूलन योजना (1994-95), राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (1994-95), बालिका समृद्धि योजना (1997-98), प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम (1997-98), पल्स पोलियो कार्यक्रम (1997-98), कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना (1997-98), लक्ष्य आधारित खाद्यान्न वितरण कार्यक्रम (1997-98), महिला स्वशक्ति योजना (1998-99), राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (1997-98), महिला स्वशक्ति योजना (1998-99) राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (1999-2000) अन्नपूर्णा योजना (2000-01), जनश्री बीमा योजना (2000-01), सर्वशिक्षा अभियान (2000-01), वरिष्ठ पेंशन बीमा योजना (2003-04), जननी सुरक्षा योजना (2003-04), असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना (2003-04), सार्वजनिक स्वास्थ्य बीमा योजना (2003-04) आदि योजनाएँ प्रमुख हैं।²⁰ इनके अतिरिक्त 'राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (2005, 4 अप्रैल), राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005, 12 अप्रैल) आदि नवीन योजनाएं लागू की गयी हैं।'²¹

महिला कल्याण हेतु इन्दिरा महिला समृद्धि योजना, स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना, किशोरी शक्ति योजना, बालिका समृद्धि योजना, सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय महिला कोष, महिला उद्यमियों हेतु विकास बैंक आदि योजनाएँ एवं कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। सरकार द्वारा विधवा तथा हिन्दू विवाह एवं विवाह विच्छेद अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिन्दू नाबालिग एवं संरक्षता अधिनियम 1956, परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, मातृत्व हिम लाभ अधिनियम 1961, स्त्रियों एवं कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम 1956, दहेज निरोधक अधिनियम 1861, बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929, 1978 आदि।

इस प्रकार, स्वतन्त्र भारत में एक ओर दलितों एवं महिलाओं के उन्नयन हेतु शासन द्वारा किए गए विविध बहुमुखी कार्यक्रमों एवं योजनाओं तथा दूसरी ओर महिलाओं के संरक्षण एवं विकास हेतु किए गए असंख्य कार्यक्रमों, दलित महिलाओं पर दोनों ही लागू होते हैं अर्थात् दलित महिलाएँ इन दोनों से लाभान्वित एवं प्रभावित हुई दलित की होगी, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। स्वतन्त्रता-पूर्व काल से दलित महिलाओं की परम्परागत स्थिति बहुत ही खराब एवं दयनीय रही है, किन्तु स्वतन्त्रोपरान्त संवैधानिक प्रावधानों एवं महिला कल्याणकारी सुविधाओं, दोनों का उन्हें लाभ मिल रहा है। अतः वर्तमान सन्दर्भ में दलित महिलाओं के जीवन एवं विभिन्न क्षेत्रों में काफी परिवर्तन हुए हैं। स्वामी विवेकानन्द ने सही कहा है कि 'जो राष्ट्र नारी का सम्मान नहीं करता वह कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है। उनका विश्वास था कि महिला को असहाय, निर्बल एवं पराश्रित मानने के स्थान पर समाज का दायित्व है कि वह उन्हें उनके स्वाभाविक विकास के सभी अवसर प्रदान करें जो उनके अधिकार हैं।'²² अतः संवैधानिक प्रावधानों, सामाजिक विधानों, अनेकानेक हरिजन कल्याण एवं महिला कल्याण योजनाओं एवं कार्यक्रमों तथा परिवर्ती सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप दलित महिलाओं की परम्परागत स्थिति को ऊपर उठाना आवश्यक है।

7. पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं के परिणामस्वरूप दलित महिलाओं के जीवन में सुधार

पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण लोकतन्त्र में दलित महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों को संवैधानिक दर्जा तथा अनुसूचित जातियों एवं महिलाओं के लिए आरक्षण प्रदान किया गया। इसके

परिणामस्वरूप दलित महिलाओं को ग्राम पंचायतों में सदस्य, सरपंच एवं अन्य निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का अवसर मिला। इससे उनके भीतर राजनीतिक जागरूकता, नेतृत्व क्षमता, आत्मविश्वास एवं निर्णय-निर्माण में भागीदारी की भावना विकसित हुई है।

संवैधानिक प्रतिनिधित्व का प्रभाव केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहा है। पंचायतों के माध्यम से दलित महिला प्रतिनिधियों को स्थानीय विकास की प्राथमिकताओं को निर्धारित करने तथा अपने समुदाय की समस्याओं को पंचायत के समक्ष रखने का अवसर मिला है। पेयजल, स्वच्छता, ग्रामीण आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, महिला एवं बाल विकास, गरीबी उन्मूलन एवं सामाजिक कल्याण जैसे विषय पंचायतों के कार्यक्षेत्र से जुड़े हैं। इस प्रकार, संवैधानिक प्रावधानों ने दलित महिलाओं की आवाज को स्थानीय शासन एवं विकास-प्रक्रिया से जोड़ने का आधार प्रदान किया है।

सरकारी कल्याणकारी योजनाओं एवं पंचायतों की स्थानीय कार्यान्वयन भूमिका ने दलित महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में सुधार की सम्भावनाओं को और मजबूत किया है। आवास, रोजगार, आजीविका, स्वच्छता, पेयजल, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा तथा स्वयं सहायता समूहों से सम्बन्धित कार्यक्रमों तक पहुँचने ने अनेक ग्रामीण महिलाओं के जीवन में आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक सुरक्षा को बढ़ावा दिया है। पंचायतों में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी इन योजनाओं के स्थानीय स्तर पर क्रियान्वयन, पात्र लाभार्थियों की पहचान एवं समुदाय की आवश्यकताओं को सामने लाने में उपयोगी हो सकती है। पंचायती राज मन्त्रालय भी महिला प्रतिनिधियों, स्वयं सहायता समूहों एवं आजीविका कार्यक्रमों के बीच सहयोग को महिला सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में रेखांकित करता है।

इस प्रकार, पंचायती राज, संवैधानिक आरक्षण एवं सरकारी कल्याणकारी योजनाएँ मिलकर दलित महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण का आधार निर्मित करती हैं। राजनीतिक प्रतिनिधित्व ने उन्हें सार्वजनिक निर्णय-प्रक्रिया में स्थान दिया है, जबकि कल्याणकारी योजनाओं ने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं एवं आजीविका से जुड़ी समस्याओं के समाधान के अवसर बढ़ाए हैं। हालाँकि इन उपलब्धियों के बावजूद जातिगत भेदभाव, पितृसत्ता, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता तथा निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की वास्तविक स्वायत्तता जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। इसलिए दलित महिला जीवन में स्थायी सुधार के लिए संवैधानिक अधिकारों के साथ शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, प्रशासनिक जागरूकता एवं प्रभावी योजना-क्रियान्वयन को भी सुनिश्चित करना आवश्यक है।

8. समकालीन भारतीय समाज में दलित महिलाओं के उत्थान हेतु सुझाव

समकालीन भारतीय समाज में पंचायती राज व्यवस्था, संवैधानिक प्रावधानों तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं/कार्यक्रमों ने दलित महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार किया है। पंचायतों में आरक्षण ने उन्हें राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर दिया है, जबकि शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा एवं आर्थिक सहायता से सम्बन्धित योजनाओं ने उनके आत्मविश्वास एवं जीवन-स्तर को बेहतर बनाने में योगदान दिया है। फिर भी, इसको स्थायी एवं व्यापक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव आवश्यक हैं—

1. **शिक्षा एवं कौशल-विकास पर विशेष जोर**—दलित बालिकाओं एवं महिलाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, डिजिटल साक्षरता, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं कौशल-विकास कार्यक्रमों का विस्तार किया जाना चाहिए।
2. **आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा**—स्वयं सहायता समूहों, सूक्ष्म-वित्त, स्वरोजगार, उद्यमिता तथा बाजार से जुड़ाव के माध्यम से दलित महिलाओं को स्थायी आय के अवसर उपलब्ध कराने चाहिए।

3. **पंचायती राज में वास्तविक सशक्तिकरण**—केवल निर्वाचित प्रतिनिधि बनाना पर्याप्त नहीं है। दलित महिला पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशासनिक प्रशिक्षण, बजट एवं कानून की जानकारी एवं स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की जानी चाहिए। उनके स्थान पर परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा निर्णय लेने की प्रवृत्ति को समाप्त करना आवश्यक है।
4. **संवैधानिक अधिकारों के प्रति जागरूकता**—समानता, स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय, आरक्षण तथा भेदभाव-विरोधी संवैधानिक प्रावधानों के बारे में दलित महिलाओं को सरल भाषा में जानकारी दी जानी चाहिए, ताकि वे अपने अधिकारों का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें।
5. **सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन**—योजनाओं का लाभ वास्तविक लाभार्थियों तक पहुँचे, इसके लिए स्थानीय स्तर पर पारदर्शिता, सामाजिक अंकेक्षण, निगरानी एवं शिकायत-निवारण की प्रभावी व्यवस्था होनी चाहिए।
6. **जातिगत भेदभाव एवं लैंगिक हिंसा का उन्मूलन**—दलित महिलाओं को जाति एवं लिंग—दोनों स्तरों पर होने वाले भेदभाव का सामना करना पड़ता है। अतः कानूनी संरक्षण के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता एवं सामुदायिक स्तर पर संवेदनशीलता कार्यक्रम आवश्यक हैं।
7. **स्वास्थ्य एवं पोषण की बेहतर व्यवस्था**—मातृ स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छता, सुरक्षित पेयजल तथा प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं तक दलित महिलाओं की आसान एवं समान पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए।
8. **भूमि एवं सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों को मजबूत करना**—आर्थिक सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को सम्पत्ति, भूमि एवं आवास सम्बन्धी अधिकारों के प्रति जागरूक करने तथा उनके वैधानिक अधिकारों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।
9. **डिजिटल एवं तकनीकी समावेशन**—डिजिटल बैंकिंग, ऑनलाइन सरकारी सेवाओं, डिजिटल शिक्षा एवं सूचना-प्रौद्योगिकी तक पहुँच बढ़ाकर दलित महिलाओं को सरकारी योजनाओं एवं आर्थिक अवसरों से सीधे जोड़ा जा सकता है।
10. **सामाजिक नेतृत्व का विकास**—पंचायतों के अतिरिक्त सहकारी समितियों, स्वयं सहायता समूहों, विद्यालय प्रबन्धन समितियों एवं स्थानीय नागरिक संस्थाओं में दलित महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए।
11. **योजनाओं के मूल्यांकन में महिलाओं की भागीदारी**—दलित महिलाओं के लिए बनाई गई योजनाओं की सफलता का मूल्यांकन केवल लाभार्थियों की संख्या से नहीं, बल्कि उनकी आय, शिक्षा, सामाजिक प्रतिष्ठा, निर्णय लेने की क्षमता एवं वास्तविक स्वायत्तता में हुए परिवर्तन के आधार पर किया जाना चाहिए।
12. **‘प्रतिनिधित्व’ से ‘सशक्त भागीदारी’ की ओर**—भविष्य की नीतियों का लक्ष्य केवल दलित महिलाओं की संख्या बढ़ाना नहीं, बल्कि उन्हें निर्णय लेने वाली, अधिकार-सम्पन्न एवं आत्मनिर्भर सामाजिक एवं राजनीतिक इकाई बनाना होना चाहिए।

यह याद रखना चाहिए कि पंचायती राज, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी कल्याणकारी योजनाओं ने दलित महिलाओं के लिए अवसरों के नए द्वार खोले हैं, लेकिन इन अवसरों का वास्तविक सामाजिक सशक्तिकरण में रूपान्तरण अभी भी चुनौती बना हुआ है। अतः भविष्य की रणनीति शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, राजनीतिक क्षमता, अधिकार-जागरूकता, सामाजिक सम्मान एवं प्रभावी योजना-क्रियान्वयन के समन्वित मॉडल पर आधारित होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि नीतिगत प्रावधानों के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर सामाजिक भेदभाव, पितृसत्ता एवं संस्थागत बाधाओं को दूर करने के लिए सहभागी एवं जवाबदेह तन्त्र विकसित किए जाएँ।

9. निष्कर्ष

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था, 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 तथा विभिन्न सरकारी कल्याणकारी योजनाओं ने दलित महिलाओं के जीवन में परिवर्तन की महत्वपूर्ण आधारभूमि तैयार की है। पंचायतों में आरक्षण ने दलित महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में प्रवेश का अवसर प्रदान किया है, जिससे उनमें राजनीतिक चेतना, नेतृत्व क्षमता, आत्मविश्वास तथा सामाजिक सहभागिता का विकास हुआ है। साथ ही, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा एवं आजीविका से सम्बन्धित सरकारी योजनाओं ने उनके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की स्थितियों में सुधार की सम्भावनाओं को मजबूत किया है। इस दृष्टि से पंचायती राज केवल स्थानीय शासन की व्यवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय एवं लोकतान्त्रिक समावेशन का प्रभावी माध्यम भी है।

हालाँकि, संवैधानिक प्रावधानों एवं सरकारी योजनाओं की उपलब्धता अपने-आप में दलित महिलाओं के वास्तविक सशक्तिकरण की गारण्टी नहीं है। जातिगत भेदभाव, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, राजनीतिक हस्तक्षेप तथा योजनाओं के क्रियान्वयन में व्यावहारिक कठिनाइयों उनके अधिकारों एवं अवसरों को सीमित करती हैं। अतः दलित महिलाओं के जीवन में स्थायी एवं व्यापक सुधार के लिए केवल प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना पर्याप्त नहीं, बल्कि उन्हें शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, राजनीतिक प्रशिक्षण, प्रशासनिक जानकारी एवं निर्णय लेने की वास्तविक स्वायत्तता प्रदान करना भी आवश्यक है। संवैधानिक अधिकारों, प्रभावी स्थानीय शासन एवं समावेशी कल्याणकारी नीतियों के समन्वित प्रयास से ही दलित महिलाओं को सामाजिक सम्मान, समान अवसर एवं गरिमापूर्ण जीवन की वास्तविक अनुभूति कराई जा सकती है।

नोट्स एवं सन्दर्भ-सूची

1. प्रो० लाल बहादुर शर्मा, “संविधान और महिला अधिकार”, *दलित औरतों का मानव अधिकार*, दिल्ली: दुर्गा प्रकाशन, 2010, पृ०सं० 166.
2. कविता शर्मा, “स्त्री सशक्तिकरण के अभाव”, *पंचायतों में महिलायें*, नई दिल्ली: क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, 2002, पृ०सं० 121-122.
3. *अमर उजाला दैनिक*, 12 अप्रैल, 2015, पृ०सं० 04.
4. मिनाक्षी सिंह, “महिला कानून”, *संविधान में महिला*, पृ०सं० 19.
5. एम० एल० गुप्ता एवं डी० डी० शर्मा, *भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र*, आगरा: साहित्य भवन, 2014, पृ०सं० 54, 58.
6. सी०एच० हनुमंतराव, *टेक्नोलॉजिकल चेंज एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ़ गेन्स इन इण्डिया एग्रीकल्चरल*, दिल्ली: मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड, 1975.””
7. एम० एल० गुप्ता एवं डी० डी० शर्मा, पूर्वोक्त, पृ०सं० 502.
8. अन्जु राठौर, उद्धरित, मिनाक्षी सिंह, पूर्वोक्त, पृ०सं० 6.
9. अमित कुमार शर्मा, *भारतीय समाजशास्त्र के प्रमुख सम्प्रदाय*, नई दिल्ली: एन०सी०ई०आर०टी०, 2013, पृष्ठ सं० 111.
10. अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 [Act No. 22 of 1955]. इस अधिनियम में 2 सितंबर 1976 को संशोधन किया गया तथा इसका नाम बदलकर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम (नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम) कर दिया गया। इस अधिनियम में अस्पृश्यता को रोकने के लिए और भी कड़े उपाय किए गए थे। इसमें जांच अधिकारियों द्वारा अस्पृश्यता से सम्बन्धित शिकायतों की जानबूझकर अनदेखी को उकसाने के समान माना गया था। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करता है।
11. डी०डी० वसु, *भारत का संविधान (एक परिचय)*, नई दिल्ली: बाधवा एण्ड कम्पनी, 2000, पृ०सं० 91 व 92.

12. सुभाष कश्यप, *हमारा संविधान*, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, 2000, पृ0सं0 87.
13. *भारत का संविधान*, पाँचवीं अनुसूची: अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन एवं नियन्त्रण के सम्बन्ध में उपबन्ध, नई दिल्ली: भारत सरकार, विधि और न्याय मन्त्रालय, विधायी विभाग तथा *भारत का संविधान*, छठी अनुसूची: असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में उपबन्ध, नई दिल्ली: भारत सरकार, विधि और न्याय मन्त्रालय, विधायी विभाग।
14. कोनिकल सम्पादकीय समूह, *क्रोनिकल बुक*, नई दिल्ली: क्रोनिकल प्रकाशन, 2014, पृ0सं0 112. आमतौर पर ऐसी पुस्तकों का उपयोग भारत में प्रतियोगी परीक्षाओं (जैसे UPSC, PCS, SSC) की तैयारी के लिए सामान्य ज्ञान (GK), समसामयिकी (Current Affairs) या इतिहास के अध्ययन के लिए किया जाता है।
15. डी0डी0 वसु, पूर्वोक्त, 2000, पृ0सं0 36.
16. श्रीनिवास, एम0एन0, *आधुनिक भारत में जाति और अन्य निबन्ध*, नई दिल्ली: राज कमल प्रकाशन, 2001, पृ0सं0 104. इस पुस्तक का मुख्य फोकस स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद बदलते भारतीय समाज में जाति की भूमिका, संरचना एवं कार्यप्रणाली को समझना है। मूल अंग्रेजी पुस्तक *Caste in Modern India and Other Essays* 1962 में प्रकाशित हुई थी तथा इसमें 1952-1960 के बीच लिखे गए निबन्ध संकलित हैं। श्रीनिवास का तर्क है कि आधुनिकता, लोकतन्त्र, शिक्षा एवं नगरीकरण के कारण जाति समाप्त नहीं हुई, बल्कि उसने नए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप ग्रहण किए। विशेष रूप से जाति का राजनीतिकरण महत्वपूर्ण है।
17. प्रकाशन विभाग, *भारत 2015*, नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृ0सं0 1029, 1030.
18. राम आहूजा, *सामाजिक समस्याएँ*, द्वितीय संस्करण, जयपुर: रावत प्रकाशन, पृ0सं0 163-164.
19. प्रकाशन विभाग, पूर्वोक्त, पृ0सं0 164.
20. राधाकमल मुखर्जी, “अवर अर्लीयस्ट कान्सेप्शन एण्ड डेमोक्रेसी इन हिन्दुस्तान स्टेण्डर्ड”, *पूजा वार्षिकी*, 1951, पृ0सं0-112. राधाकमल मुखर्जी ने इस लेख में पश्चिमी लोकतन्त्र की आधुनिक अवधारणा से हटकर प्राचीन भारत के स्वदेशी एवं पारम्परिक लोकतान्त्रिक मूल्यों को रेखांकित किया था।
21. एम0 एल0 गुप्ता एवं डी0 डी0 शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0सं0 503.
22. *प्रतियोगिता दर्पण*, आगरा: उपकार प्रकाशन, जनवरी 2015, पृ0सं0 1055. ★